॥ श्री श्रीराधामदनगोपाल देवौ शरणम् ॥

श्री श्रीराधिका स्तोत्रम्

द्वितीय संस्करण

प्र का श क

श्रीमन्माध्वगौड़ेश्वर सम्प्रदायाचार्य श्रीश्रीगदाधर भट्ट
गोस्वामी वंशज पुराणभूषण भक्ति बिशारद परमाराध्यतम
पूज्यपाद गोस्वामी श्री श्री१०८ श्रीनित्यानन्द भट्ट जी महाराज
के श्रीचरणाश्रित श्रीकृष्णदास

श्रीराधाअष्टमी सं २०५०　　　　　　श्रीधामवृन्दावन

वन्दना।

प्रणम्य श्रीगुरु भूयः श्रीकृष्ण करुणार्णवं।
लोक नाथं जगत् चक्षु श्रीशुकतमुपाश्रये॥
श्रीमन्मदन गोपालं वृन्दाबन पुरन्दरं।
श्रीगोविन्दं प्रपद्येऽहंदीनानुग्रह कारकम्।
बन्दे श्रीकृष्ण चैतन्यं भगवन्तं कृपार्णवं।
प्रेमभक्ति वितानार्थं गौड़ेस्ववत तारह॥
श्रीमाधव पुरी बन्दे यतीन्द्रशिष्यसंयुतं।
लोक संकुरितो येन कृष्णभक्ति सुरांध्रिप॥
नमामि श्रीमद् अद्वैताचार्य श्रीवास पण्डित।
नित्यानन्दावधूतंच श्रीगदाघर पंडितं॥
अद्वैत हरिणोद्वैतं दयालु दीन वत्सल।
अस्मत्कुलाधी देवंतं नमामि च पुनः पुनः॥
तदात्मजानानां गौर प्रेम प्रेम्नाति भूषित।
श्रीकृष्ण मिश्रममिश्र भक्तिमन्तं तमाश्रये॥
अद्वैत वंश संभूत कृष्ण मिश्रालये स्थितं
मोहनं मोहहरतारं श्रीमन्तं परया मुदा।
परम गुरुमदेकं नमामि च पुनः पुनः॥
हा गुरो पुन्डरीकाक्ष दयार्द्र दीन पावन।
गोपी भावामृताब्धौ मा स्वरूपेन निमज्जय॥

प्रस्तावना

श्रीकृष्ण प्रेम प्राप्ति बड़ो दुर्लभ वस्तु है। श्रीराधा प्रेम प्राप्ति तो सर्वथा दुर्लभ। श्रीराधा महाभाव-स्वरूपा हैं एवं उनमें मादनाख्य महाभाव की एकमात्र स्थिति है। साधक में केवल प्रेमदशा तक के दर्शन होते हैं। स्नेह, मान, प्रणय, राग-अनुराग महाभाव की साधक में साक्षात् स्थिति सम्भव नहीं है। अन्त:चिन्तित सिद्ध देह में हो वह इन अवस्थाओं में स्थित होता है। महाभाव स्वरूप तो गोपी-देह में सिद्ध होता है। जहां अनुराग सर्वोपरितनी अवस्था को प्राप्त कर अपनी भाव रूप में अनुभूति, श्रीकृष्ण की अनुभूति और अपने अनुराग उत्कर्ष की अनुभूति—इन तीनों सुखों को स्वयं प्राप्त करा देता है। जिसमें प्रेम से लेकर महाभाव तक की सभी वृत्ति (क्रिया एवं प्रभाव) दीखती है। अथवा जहां प्रेम की पराकाष्ठा (यावदाश्रय) वृत्ति हो, वह महाभाव दशा है।

> अनुराग: ससंवेद्य दशां प्राप्य प्रकाशित:
> यावदाश्रय वृत्ति: चेत भाव इत्यभिधीयते
>
> (उज्ज्वल नीलमणि स्थायी १४२)

इसकी अपेक्षा भी मादन नामक महाभाव तो सबसे श्रेष्ठ है जो रति से लेकर महाभाव पर्यन्त सभी भावों का उद्गम स्थल है, उसमें सभी भाव वृत्तियों का परम उल्लास है एवं इसकी श्रीराधारानी में ही एक मात्र स्थिति है।

सर्वभावोद्गमोल्लासी मादनोऽयं परात्परः।
राजते ह्लादिनी सारः राधायामेव यः सदा ॥
(उ. नी. म स्थायी)

ऐसी वस्तु स्थिति में श्रीराधा प्रेम साध्य हो हो नहीं सकता फिर भी उसे 'साध्यशिरोमणि' कहा गया। इसका तात्पर्य यही है कि वह आनुगत्य द्वारा ही साध्य है नायिका अभिमान से साध्य नहीं। श्रीश्यामसुन्दर की जैसी सेवा एवं रुचि सम्पादन श्रीराधा स्वामिनी के मिलन से हो सकती है वैसा न तो कोई सखी स्वयं के मिलन से कर सकता है एवं किसी अन्य नायिका द्वारा। अतः सखीजन कभी निज मिलन नहीं चाहती, वे श्रीराधाकृष्ण मिलन ही चाहती हैं।

सखीजनों के बिना इस रस की पुष्टि नहीं। वे ही इसकी विस्तारिका एवं वे ही आस्वादिका हैं तथापि कभी-कभी अति अन्तरङ्गता में श्रीस्वामिनी यत्न कर सखियों से भी कृष्ण मिलन करा देती है। इससे श्रीराधा में तो रसोत्कर्ष होता है परन्तु सखियों में रस संकुचित हो जाता है। श्रीकृष्ण को भी सखी तादात्म्य प्राप्त श्रीराधा में राधा माधुर्य का आस्वादन साक्षात् न होकर परम्परा होता है।

परन्तु मंजरी (श्रीराधा दासी) स्वरूप में तो कभी भी रस संकोच होता ही नहीं। श्रीराधा मंजरी (राधा किंकरी) जनों का रसोल्लास सर्वोपरि है। श्रीगोपीजनों के आत्म मिलन में जो सुख होता है उससे शतगुण सुख सखीजनों को होता है। जब वे श्रीराधा का श्रीश्यामसुन्दर में सङ्गम कराती है और उससे भी शतगुण सुख मंजरी जनों का है। जब वे अपनी

स्वामिनी के रसोल्लास के साथ श्रीश्यामसुन्दर एवं सखीगण सभी के सुखोल्लास का दर्शन कराती है।

श्रीराधिका स्तोत्र प्रबोधानन्द सरस्वती के शुद्ध मंजरी भाव का ही उद्‌गार है। वे ही श्रीराधा-रस-सुधानिधि में कभी-कभी सखीभाव के भी वर्णन किए हैं श्रीराधा स्तोत्र में तो विशुद्ध रूप से मंजरी भाव में ही कवि की अवस्थिति है। यही भाव कवि का हृदय है—

महाभाग्य परीपाक लब्ध राधा पदस्पृहा।
काचित् सद्‌भाव प्रकृतिः स्तौति दीना निजेश्वरी ॥

श्रीराधारानी के सेवा पाने को उत्कण्ठित एवं कातरता जैसी मंजरी भाव में सम्भव है वैसी अन्यत्र नहीं।

पतित्वा धरणी पृष्ठे गृहीत्वा दशनैस्तृणम्।
तवैव चरणं दास्यं याचे वृन्दावनेश्वरि ॥

रस सेवा की अपूर्व परिपाटी इस स्तोत्र में प्राप्त होती है जहां मंजरी रास-विलास में अनिवार्य घटक है—

कदा गृहीत्वा मद् हस्तात् वरताम्बूल वीटिकाम्।
प्रियास्य चन्द्रे ददती स्वामिनीं त्वां विलोकये ॥

रस का अपूर्व भोग इस स्तोत्र में कवि ने 'मनोराज्य' में सिद्धदेह में किया है—जहां राधारसावधूलित कृष्ण भृङ्ग का दर्शन, कभी वस्त्राकर्षण, अभिसार, ताम्बूल समर्पण, व्याजेन बहिर्गमन्, निकुञ्ज रन्ध्र से केलिविलास दर्शन, शृङ्गार रचना, पादसंवाहन, श्रीकृष्ण से पुरस्कार प्राप्ति।

वाक्‌कलह, प्रणयरोष, मिलन चिह्नों के दर्शन का

उल्लास, निष्ठा, माधुर्य की महिमा, मंजरी भाव की परम पुरुषार्थता निजी दीनता आदि का लीलातादात्म्य पूर्वक वर्णन है।

स्तोत्र गायन करते हुए कवि अंतःचिन्तित देह में उस सेवा में स्थित हो जाता है जो सखियों में भी दुर्लभ है। जैसे—मिलन काल में मंजरी की निकुञ्ज में साक्षात् सेवा। स्वामिनी में सखियों के सन्मुख लज्जा है, परन्तु मंजरियों के प्रति नहीं। अतः उनका निभृत निकुञ्ज में भी प्रवेश है।

गाढं त्वत् चरणाम्भोज बद्ध प्रेमाहमीश्वरि।
कदा रतिरसं सान्द्रं सर्वमास्वादये तव॥
कदा कान्तं परित्यज्य सुप्रायाः कुञ्जमंदिरे।
तव संवाहयिष्यामि सुकुमारं पदाम्बुजम्॥

इसी प्रकार स्वामिनी के अतिशय सुख एवं स्वाद-वर्धनार्थ कृष्णोपभुक्त कृष्ण अधरामृत संयुक्त (मिश्रित) भाग का श्रीस्वामिनी को समर्पण।

कदा कृष्णोपभुक्तं त्वां समर्प्याहं प्रियेश्वरि।
त्वदुच्छतृष्टामृतं भुक्त्वा कृतकृत्यं पदं लभे॥

जहां निकुञ्ज लीला में सहभोज है वहां प्रमुखतः गौड़ीय सेवा पद्धति में गोष्ठ निकुञ्ज मिलित लीला होने से यह परम्परा भी प्रसिद्ध है।

जैसे भाव वैसी ही अपूर्व प्रसन्न भाषा। पद शय्या स्फुट अलंकरण, प्रसाद गुण। कवि की प्रतिभा झलक पड़ती

है जो साधक एवं काव्य समीक्षक दोनों को ही आप्यायित करती है।

इस स्तोत्र का सानुवाद प्रकाशन सं. २०२१ में श्रीकृष्णदास बाबा— 'कुसुम सरोवर' से कराया था। अब श्रीकृष्णदास बाबा के अन्य ग्रन्थों के ही समान यह स्तोत्र भी अप्राप्त हो गया है। हमारे परम प्रिय एवं श्रीपितृचरण गोस्वामी नित्यानन्द भट्ट जी महाराज के कृपापात्र श्रीकृष्णदास बाबा के ग्रन्थ के पुनः प्रकाशन के लिए प्रयत्न किया है। इससे रसिक साधकों का अपूर्व हित सम्पादन होगा। ऐसी आशा है।

रसिकजन कृपाकांक्षी
गो० (डा.) अच्युत भट्ट
पी-एच डो., भागवत भूषण

वि. सं. २०५०
पुरुषोत्तममास

❀ श्रीश्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः ❀

श्रीराधिकास्तोत्रम्

श्रीवृन्दारण्यबिलासिन्यै नमः

महाभाग्य परीपाक लब्ध राधा पद स्पृहा ।
काचित्सद्भावप्रकृतिः स्तौति दीना निजेश्वरीम् ॥१॥

महान भाग्य राशि के परिपाक से श्रीराधा के चरण-कमल की स्पृहा प्राप्त, उत्तम प्रकृति वाली, दीन कोई जन अपनी-ईश्वरी अर्थात् श्रीवृषभानुनन्दिनी की स्तुति करती है। ग्रन्थकार श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती जी प्रकृति भावाविष्ट होकर इस प्रकार की स्त्रीलिंग वाची प्रयोग करते हैं ॥१॥

शृङ्गार रस माधुर्य्य सार सर्वस्व विग्रहे ।
नमो नमो जगद्वन्द्ये वृन्दावन महेश्वरि ! ॥२॥

हे शृङ्गार रस के माधुर्य सार सर्वस्व विग्रहवाली, हे जगत वन्दनीये, हे वृन्दावन की महेश्वरि ! आपको नमस्कार नमस्कार ।

चारुचम्पक गौराङ्गि कुरङ्गी भङ्गिलोचने ।
कृपया देहि मे दास्यं प्रेमसार रसोदयम् ॥३॥

हे मनोहर चम्पक पुष्प की भांति गौर अङ्गवाली, हे हिरण की भङ्गिमा की भांति नेत्र वाली, आप कृपया मेरे लिये

प्रेम-सार रस के उदय करने वाली अपनी दास्यता को दीजिये ।

प्रसीद परमानन्द रस निस्यन्दि सत्पदे ।
सकृत्कृपाकटाक्षेण पश्य मामतिकातरम् ।।४।।

हे परमानन्द रस क्षरणशील सुन्दर चरण-कमल वालो श्रीराधे आप एक बार ही कृपाकटाक्षपात के द्वारा अति कातर मुझे देखिये ।

कोटि कोटि जगद्भासिनख चन्द्रमणिच्छटे ।
आश्चर्य्य रूप लावण्ये सकृन्मे देहि दर्शनम् ।।५।।

हे श्रीराधे आपकी नखचन्द्र मणि की छटा से कोटि-कोटि जगत भासमान हैं। आपके रूप लावण्य आश्चर्य से आश्चर्य हैं, आप एक बार मुझे दर्शन दीजिये ।

महा प्रेम रसानन्द मद विह्वलताकृते ।
पुलकोद्भिन्नसर्वाङ्गि कदा त्वं परिलोक्यसे ।।६।।

हे महान् प्रेमरस आनन्द की मत्तता से विह्वल अंग वाली, हे पुलकों से पुलकायमान सर्वाङ्ग वाली मैं कब तुम्हें देखूँगा ।

हा नाथ प्राणदयित, क्वासि क्वासीति विह्वलाम् ।
अंकस्थेऽपि प्रियेराधे कदा त्वामवलोकये ।।७।।

अपने श्रीकृष्ण के गोद में रहती हुई भी हे नाथ हे प्राण-प्रिय तुम कहां हो, कहां हो इस प्रकार बोलती हुई विह्वल हो जाती हो इस प्रकार आपका मैं कब अवलोकन करूँगा ।

सर्वज्ञोऽपि परेशोऽपि मुग्ध मुग्धातिनीचवत् ।
चाटूनि कुरुते यस्याः सैव मे जीवितेश्वरी ।।८।।

परम तत्व के परमेश्वर सर्वज्ञ के सर्वज्ञ श्रीकृष्णचन्द भी मोहित होकर अति मुग्ध दीन की भांति जिनका मनोहर आलाप करते हैं वह श्रीराधिका मेरे जीवन की ईश्वरी हैं।

यस्याः पदरसानन्त कोट्यंशेनापि नो समाः ।
सर्वं प्रेमानन्द रसा सैव त्वम स्वामिनी मम ।।९।।

जिनके पद रस के अनन्त कोटि अंश के बराबर समस्त प्रेमानन्द रस समता को प्राप्त नहीं करता है वह आप मेरी स्वामिनी हो ।

हा राधे प्राणकोटिभ्योऽप्यति प्रेष्ठ पदाम्बुजे ।
तव सेवां बिना नैव क्षणं जीवितुमुत्सहे ।।१०।।

हे श्रीराधे कोटि प्राण से भी अत्यन्त प्रिय आपके चरण कमल की सेवा के बिना क्षणकाल भी मैं जीवित रहने का सहन नहीं कर सकता हूँ ।

सर्वलोक महाश्चर्य्या सुकुमाराङ्गि ते कथा ।
त्वत्प्रसादादाप्तरूपा बिनाप्ता भजनं मया ।।११।।

हे सुकुमार अङ्ग वाली, केवल तुम्हारे प्रसाद से प्राप्त तुम्हारी कथा समस्त लोक में महान आश्चर्य है जो भजन के बिना ही हमसे प्राप्त अर्थात् भजन रूप हो गई है ।

पतित्वा धरणीपृष्ठे गृहीत्वा दशनैस्तृणम् ।
तवैव चरणे दास्यं याचे वृन्दावनेश्वरि ।।१२।।

हे वृन्दावनेश्वरि मैं पृथ्वी पर पड़कर दाँतों से तृण धारण कर तुम्हारे चरण कमल की दासता को चाहता हूं।

तवाश्चर्य्यं रसामोदमत्तमत्ता कृति कदा।
किशोरं श्याममालोके बिभ्रमन्तं इतस्ततः ॥१३॥

हे श्रीराधे ! आश्चर्य रसामोद से मत्त से मत्त आकार वाले तुम्हारे आस पास में भ्रमण करने वाले श्याम किशोर का मैं कब अवलोकन करूँगा।

कदा तव पदाम्भोजे निपतिष्णुं मुहुः मुहुः।
कृष्ण भृङ्गमहं बीक्ष्ये त्वद्रसासव घूर्णितम् ॥१४॥

हे श्रीराधे तुम्हारे चरण कमल में तुम्हारे रसासव से घूर्णायमान और बार बार पतित कृष्ण भ्रमर का कब अवलोकन करूँगा।

तत्र तत्रातिमत्तेन किशोरेण धृतांचलाम्।
हुंकार गर्भ दृग्भृङ्गी कदा त्वामवलोकये ॥१५॥

हे श्रीराधे वहां-त्रहां अतिमत्त किशोर कृष्णचन्द्र के द्वारा जिनके पटांचल धारण किया जाता है ऐसी हुँकार गर्भयुक्त नेत्र भँगिमा प्रकाशशील आपका मैं कब अवलोकन करूँगा।

भूयो भूयोऽनुनीताहं परमानन्दमूर्त्तिना।
प्रसादं तव पश्यानि प्रपतता पदाम्बुजे ॥१६॥

परमानन्द मूर्ति रूप उन श्रीकृष्ण के द्वारा बार बार अनुनीत मैं कब तुम्हारे चरण कमल में पड़कर तुमको प्रसन्न रूप से अवलोकन करूँगा।

कदा त्वां युक्ति चातुर्यैं लोक धर्मादिशंकिताम् ।
प्रबोध्य घटयिष्यामि महारसिक मौलिना ॥१७॥

हे श्रीराधे मैं कब लोक धर्मादिक में शंका करने वाली आपको युक्ति चतुराई के द्वारा प्रबोधित कराकर महारसिक शिरोमणि श्रीकृष्ण चन्द्र के साथ मिलन कराऊँगा ।

कदा कान्तं परिष्वज्य सुप्तायाः कुञ्जमन्दिरे ।
तव संवाहयिष्यामि सुकुमारं पदाम्बुजम् ॥१८॥

हे श्रीराधे मैं कब कुञ्ज मन्दिर में प्रिय श्रीकृष्ण के द्वारा आलिंगित होकर शयन करने वाले आपके सुकुमार चरणकमल का संवाहन करूँगा ।

कदा गृहीत्वा मद्धस्ताद बरताम्बूल बीटिकाम् ।
प्रियास्यचंद्रे ददती स्वामिनि त्वां बिलोकये ॥१९॥

हे स्वामिनी श्रीराधे मेरे हाथ से मनोहर ताम्बूल बीटिका ग्रहण कर प्रिय के मुख चन्द्र में प्रदान करने वाली आपका मैं कब अवलोकन करुँगा ।

कदा रति कला बेशात् कर्षन्तं ते कुचाञ्चलम् ।
बिलोक्य त्वत्प्रियं व्याजात् स्मित्वा यास्याम्यहं बहिः ॥

हे श्रीराधे रति कला के आवेश से तुम्हारे कुचांचल का आकर्षण करने वाला तुम्हारे प्रिय श्रीकृष्ण का अवलोकन कर छल से मन्दहास्य करता हुआ मैं कब बाहर चला जाऊँगा ।

कदा रसिकराजेण रम्यमाणां महाद्भुतम ।
दृष्ट्वा दृष्ट्वा कुंजरन्ध्रे भवेयं रस विह्वलः ॥२१॥

हे श्रीराधे कब मैं रसराज प्राणबल्लभ के साथ महान अद्‌भुत रमणशील आपको कुञ्जरन्ध्रों में दर्शन करता हुआ रस विह्वल हों जाऊँगा।

महा मधुर सत्प्रेम रससार महोदये।
अहो त्वन्मायया मूढास्त्वद्दास्ये नोन्मुखायनाः ॥२२॥

महान मधुर सत् प्रेम रस के सार रूप महान उदयशील हैं श्रीराधे ! आपकी माया (बहिरंगा) के द्वारा मोहित हो मूढ़ जन आपके दास्य में उन्मुख नहीं होते हैं।

अहो त्वच्चरणाम्भोज माधुरीमपि सत्तमाम्।
सर्वज्ञा अपि अज्ञात्वा ग्राम्यंतेव बहिर्वहि : ॥२३॥

हे श्रीराधे सर्वज्ञ जन भी उत्तम रूप से तुम्हारे उत्तम-सत्तम चरण कमल के माधुर्य को न जानकर इधर-उधर भ्रमण करते हैं।

त्वत्सेबारीतिराश्चर्य्य लोक वेद विलक्षणा।
तवैव कृपया लभ्या कदा सद्गुरु संगतः ॥२४॥

तुम्हारी सेवा परिपाटी अति आश्चर्य एवं लोक वेद से विलक्षण है जो कि सद्‌गुरु संग से एक मात्र तुम्हारी कृपा से कभी प्राप्त होती है उस सेवा परिपाटी को मैं कब प्राप्त करूँगा।

त्वमेव स्वपदाम्भोजरसवर्त्मनि मे मतिम्।
नितवत्याशु कारुण्यात्पूर्णाशां न करिष्ये किम् ॥२५॥

हे श्रीराधे आपने ही अत्यधिक करुणा बल से निज चरण कमल रस मार्ग में मेरी मति को लगाया है अतः क्या मेरी आशा की पूर्ति नहीं करेंगी ।

कदा कृष्णोपभुक्तं त्वां समर्प्यहि प्रियेश्वरि ।
त्वदुच्छिष्टामृतं भुंक्त्वा कृतकृत्यंपदं लेभे ॥२६॥

हे श्रीराधे हे प्रियेश्वरि कब मैं श्रीकृष्ण के द्वारा उपभुक्त वस्तु तुमको निवेदन कर तुम्हारे उस उच्छिष्ट अधरामृत का भोजन कर कृत्यकृत्य हो जाऊँगी ।

कुंजतल्प समासीनलोल कृष्णांग भूषणैः ।
कदा त्वां भूषयिष्यामि नवसंग भयत्रपाम् ॥२७॥

नवीन संग से भयभीत, लज्जापरायण आपको कुन्ज शय्या में विराजमान चंचल श्रीकृष्ण के अंग भूषणों के द्वारा कब भूषित करूँगी । यहाँ विपरीत शृङ्गार का वर्णन है ।

निज पादाम्बुज प्रेमरसज्योति घनाकृतिम् ।
कुरु मां किंकरी प्राणदयिते बार्षभानवि ॥२८॥

हे प्राणप्रिये हे श्रीवृषभानुनन्दिनी मुझे निज चरण कमल के प्रेम रस ज्योति के निबिड़ आकार रूप अपनी दासी बनाइये ।

प्रेमामृत रसानन्द मकरन्दौघ वर्षिणि ।
कदा पदारविन्देऽहं विन्दे दास्यं तवेश्वरि ॥२९॥

प्रेमामृत रसानन्द मकरंद समूह के वर्षण कारिणी हे

ईश्वरी राधे मैं कब आपके पदारविन्द में दास्यता को प्राप्त करूँगी।

भूत्वाति सुकुमारांगी किशोरी गोपकन्यका।
कदाऽहं लालयिष्यामि मृदुलं ते पदाम्बुजम् ॥३०॥

हे श्रीराधे कब मैं सुकुमार अंग, किशोरी अवस्था प्राप्त कर गोप कन्यका रूप होकर तुम्हारे कोमल चरण का लालन करूँगी।

कदा गोविन्दसन्देशवचनामृत धारया।
पूरयिष्यामि ते कर्णकुहरं हृदयेश्वरि ! ॥३१॥

हे हृदयेश्वरी राधे मैं कब श्रीगोविन्द के संदेशरूप वचनामृत धारा से तुम्हारे कर्ण कुहर की पूर्ति करूँगी।

कदा तदाश्वासबाणीशीतलामृत सेवनैः।
संजीव्य हरिमुत्तप्तं लेभे त्वत्कंठ मालिकाम् ॥३२॥

हे श्रीराधे मैं कब उस आश्बास बाणी रूप शीतल अमृत सेचन के द्वारा विरह से तपायमान श्रीहरि को जीवित कर तुम्हारी कंठमाला को प्राप्त करूँगी।

कदा त्वां तत्सुहृद्वेषां कृत्वा संरक्षितां मया।
द्रागुपेत्य हरिस्मेरः करे धृत्वाभिरुष्यते ॥३३॥

हे श्रीराधे कब हमारे द्वारा प्रिय सखा के बेश कारिणी एवं संरक्षित आपके निकट मन्द हास्य वाले हरि शीघ्र उपस्थित होकर आपके हस्त कमल का धारण करेंगे उस समय मैं उन पर क्रोध करूँगी।

कदा विहृत्य कान्तेन क्वचिदस्मत्परोक्षतः ।
तद्रूषितां समायातां हसन्तीं त्वां बिचक्ष्महे ॥३४॥

हे श्रीराधे कब कहीं हमारे असाख्यात् में प्राणबल्लभ के साथ विहार करती हुई आप रोष प्राप्त हो जाऊँगी एवं हमारे पास आवेंगी उस समय मैं हसती तुमको अवलोकन करूँगी ।

मिथ्यैवागो विनिर्देश्यां त्वत्प्राणे ब्रजनागरे ।
प्रेमान्धायाः कदा तेऽहं रसदा पनये रूषम् ॥३५॥

हे श्रीराधे ब्रजनागर प्राणबल्लभ के प्रति मिथ्या दोष लगाने वाली प्रेमान्ध तुम्हारी रसदायीन उस रोष को कब दूर करूँगी ।

विदग्ध सुन्दरी वृन्दबर चूडामणेः कदा ।
महारसनिधे राधे पदमाराधये तव ॥३६॥

हे महारसनिधि स्वरूपिणी श्रीराधे विदग्ध ब्रजसुन्दरी गण के उत्तम चूडामणि रूप आपके चरण कमल की आराधना कब करूँगी ।

हा राधे स्वामिनि ब्रजकिशोरि दिव्यरूपिणि ।
प्रेमैकरसमग्नोऽहं भवेयं तव किंकरी ॥३७॥

हे स्वामिनी हे श्रीराधे हे बृजकिशोरी हे दिव्य रूपिणी प्रेम रस मात्र से मग्न मैं कब तुम्हारी किंकरी हूँगी ।

वैष्णवानन्द कोटिर्वा ब्रह्मानन्दादिकोटयः ।
मया तव नखज्योति कणाः निर्मंच्छनी कृताः ॥३८॥

मैंने आपको नख ज्योतिकणिका में कोटि-कोटि वैष्णवानन्द अथवा ब्रह्मानन्दादि कोटि कोटि न्यौछावर की है।

सर्वे धर्म्माः ममाधर्माः साधुसर्वमसाधु मे।
न यत्र लभ्यते राधे त्वत्पदाम्बुज माधुरी ।।३९।।

हे श्रीराधे जहाँ पर तुम्हारी चरण कमल माधुरी प्राप्त नहीं है, वहाँ समस्त धर्म मेरे लिये अधर्म एवं समस्त साधुता मेरे लिये असाधुता है।

कदा मदान्धगोविन्द सुतक्ष्ण नखरक्षतैः।
मिथ्याव्यथानुकारां त्वां हसिष्यामि मुदान्विता ।।४०।।

हे राधे कब मदमत्त श्रीगोविन्द के अति तीक्ष्ण नखक्षतों से झूँठ मूँठ व्यथा का अनुकरण करने वाली आपको देखकर आनन्द युक्त होकर मैं हसूँगी।

आश्चर्य्यरसमत्तेनं महानागर मौलिना।
संभुज्यमानां त्वां वीक्ष्य कदा स्यां पुलकान्विता ।।४१।।

आश्चर्य रस से उन्मत्त महानागर शिरोमणि श्रीकृष्ण के द्वारा संभुक्तमाना आपको देखकर मैं कब पुलकयुक्त हो जाऊँगी।

तत्तत्सुरतवैचित्रीचतुरं त्वत्प्रिय कदा।
त्वांके वीक्ष्य खेलन्तं पतेऽयं मूर्च्छिता भुवि ।।४२।।

हे राधे उन उन सुरत वैचित्रियों में चतुर तुम्हारे प्रिय को तुम्हारे गोद में क्रीड़ा करते हुए देखकर मैं कब मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर जाऊँगी।

किं करोमि क्व धावामि कस्य पादे लुठाम्यहम् ।
कथं वा लभ्यते राधे तव दास्य रसोत्सवम् ॥४३॥

हे श्रीराधे मैं क्या करूँगी, और भागकर कहाँ जाऊँगी किसके चरण में लुठायमान हूँगी और किस प्रकार तुम्हारे दास्य रस उत्सव मेरे लिये प्राप्त होगा ।

वैकुण्ठादिपदं काम्यमपि तुच्छं मतं मम् ।
न यत्र त्वामहं बीक्ष्ये वृन्दारण्य बिलासिनि ! ॥४४॥

हे श्रीराधे हे वृन्दावन विलासिनी जहाँ मैं आपको नहीं देखती हूँ वहां काम्य बैकुंठादि पद भी तुच्छ प्रतीत होता है।

चुम्बयमानां श्लिष्यमानां पीयमानाधरां मुहुः ।
कदा त्वां बीक्ष्य कांतेन मग्नास्यां रससागरे ॥४५॥

हे श्रीराधे प्राणबल्लभ श्रीकृष्ण तुम्हारे अधरविम्ब पान के लिये चुम्बन एवं आलिंगन करेंगे मैं उस अवस्था को देखकर कब रस सागर में मग्न हो जाऊँगी ।

गाढ़ं त्वच्चरणाम्भोजबद्ध प्रेमाहमीश्बरि ! ।
कदा रतिरसं सांद्र सर्वमास्वादये तव ॥४६॥

हे ईश्वरी श्रीराधे तुम्हारे चरण कमल में गाढ़ रूप से बद्ध प्रेम वाली मैं कब कोमल चित्त से समस्त रति रस का आस्वादन करूँगी ।

श्रीराधे त्वत्पदाम्भोजपराग परिरञ्जिते ! ।
वृन्दारण्ये रसमये देहि मे निश्चलां रतिम् ॥४७॥

हे श्री राधे तुम्हारे चरण कमल पराग से परिरंजित रसमय श्री वृन्दावन में मेरे लिये निश्चल रति को दीजिये।

यतंतः कृतिनो जज्ञतपः स्वाध्याय संयमैः।
अहं त्वच्चरणाम्भोजरेणोरेवाशया स्थितः ॥४८॥

सुकृति वाले जन समूह यज्ञ, तपस्या, स्वाध्याय, संयमों के द्वारा तुम्हारी जाजन करते हैं करने दोजिये मैं केवल तुम्हारे चरण कमल रेणु की आशा करती हूँ।

न त्वं बैकुंठलोकेऽपि न वा ते रसदो प्रियः।
वृन्दावनाद्वते तस्मात्त देवाहं समाश्रितः ॥४९॥

वृन्दावन को छोड़कर तुम अन्यत्र कहीं नहीं हो न तुम्हारे प्रिय श्री कृष्ण हैं। मेरे लिये बैकुण्ठ लोक भी प्रिय नहीं है इसलिये मैं वृन्दाबन में तुम्हारे आश्रय में पड़ी हूँ।

सर्वानन्दमया कारेष्वपि वृन्दाबन प्रभोः।
राधे त्वद्रसमत्तं ब मूर्तिर्मे रोचते परम् ॥५०॥

हे श्रीराधे वृन्दावन प्रभु कृष्ण चन्द्र की सर्वानन्दमय नाना प्रकार मूर्तियां हैं परन्तु तुम्हारे रस से मत्त जो मूर्ति है वह मेरे लिये रुचिकर है।

नित्योन्मादर सप्रेम बिलास मधुराकृतिम्।
त्वद्दास्येन बिनादृश्यं प्रियं प्रेम्ना प्रदर्शय ॥५१॥

हे श्रीराधे नित्य उन्मद रस प्रेम विलास से युक्त मधुरा-

कार, बिना तुम्हारे दास्य से अदृश्य अपने प्रिय श्रीकृष्ण को प्रेम के द्वारा दिखाओ।

पितृमातृ सुहृद्बंधुमुक्तानामप्यगोचरम्।
कदा ते प्रियमाश्चर्य्यरसमूर्ति बिलोकये ॥५२॥

पिता, माता, सुहृद, बन्धु एवं मुक्त गण के भी अगोचर, आश्चर्य रस मूर्ति वाले, तुम्हारे प्रिय श्रीहरि का मैं कब अवलोकन करूँगी।

तत्तल्लोकचमत्कारी तन्वन्सुखमयाकृतिः।
सर्वसार रसांगश्री कदा ते दृश्यते प्रियः ॥५३॥

उन लोक में चमत्कारी, उन उन सुखमय आकार वाले, समस्त सार रस रूप अंगश्री वाले तुम्हारे प्रिय श्रीकृष्ण कब मुझ से दृश्य होंगे।

वृन्दाबननिकुञ्जेषु नित्यलीला विनोदिनम्।
त्वदेकनिरतं नित्यं कदा बीक्ष्ये प्रियं तब ॥५४॥

वृन्दावन के निकुंजों में नित्यलीला महाविनोद परायण, एक मात्र तुममें निरंतर रत, तुम्हारे प्रिय को मैं कब अवलोकन करूँगी।

अनन्तानन्दरूपं ते प्रियं त्वन्मयं जीवनम्।
बिकल्पितगतिं मूढैः सदाहं द्रष्टुमुत्सहे ॥५५॥

अनन्त आनन्द स्वरूप त्वन्मय जीवन वाले, मूढ जनों से अप्राप्त गति वाले तुम्हारे प्रिय श्रीकृष्ण चन्द्र का दर्शन के लिये मैं उत्कंठित हूँ।

यस्यानन्दरसांशांशमुपजीवति सर्वतः ।
तत्तदाकारलीलं तं दिदृक्षे त्वत्प्रियं रहः ॥५६॥

जिस आनन्द रस के अंशांश में समस्त उपजीवित होते हैं इस उस महा आकार लीला को धारण करने वाले तुम्हारे प्रिय श्रीकृष्ण का मैं एकान्त में कब दर्शन करूँगी ।

यद्यप्यानन्दसाम्राज्यं सर्व लीलाकृतिष्वपि ।
तथापि लेशमात्रं तत् त्वद्वक्षोरुहभूषणे ॥५७॥

यद्यपि समस्त लीलामय आकृति में आनन्द साम्राज्य मौजूद है तो भी तुम्हारे वक्षोरुह के भूषण रूप श्रीहरि की तुलना में वह आनन्द साम्राज्य लेशमात्र है ।

अयोगेऽपि विमूढेऽपि मयि सर्वाधमेऽपि च ।
अनन्ताश्चर्य्यकरुणे नैवोपेक्षितुमर्हसि ॥५८॥

हे अनन्त आश्चर्य करुणामयि ! मैं अयोग्य, विमूढ एवं सर्वाधम हूँ, तो भी आप उपेक्षा नहीं कर सकती हैं ।

लोकवेद पथं त्यक्त्वा तवैव चरणाम्बुजम् ।
गतोऽस्मि शरणं राधे न मां त्यक्तुमिहार्हसि ॥५९॥

हे श्रीराधे ! मैं समस्त लोक वेद पथ का त्याग कर केवल तुम्हारे चरणकमल में शरण आयी हूँ तुम मुझे त्याग नहीं सकती हो ।

अस्तु वा मस्तु वा राधे कोटिजन्मान्तरेऽपि मे ।
त्वत्पादाम्बुरुहे दास्यमाशा त्वावश्यकी मम ॥६०॥

हे श्री राधे ! यद्यपि कोटि जन्मान्तर में मेरी आपके

श्रीचरण कमलमें दास्यता है अथवा नहीं है तो भी वह दास्यता वर्त्तमान में परम आवश्यक है।

सर्वार्थसारसारैकनखचंद्र सुधा तव।
कथं त्वच्चरणाम्भोजसेवाशां त्यक्तुमुत्सहे ॥६१॥

तुम्हारे नखचन्द्र की सुधा समस्त अर्थसार के एक मात्र सार रूप है। मैं किस प्रकार तुम्हारे चरण कमल की सेवा रूप आशा को त्याग कर सकती हूँ।

लौकिके वैदिके वापि बिरुद्धाशक्तमानसम्।
त्वत्पदैकरसे मत्तः किमप्यन्यं न पश्यति ॥६२॥

लोक में अथवा वेद में विरुद्ध आसक्ति से मन फँस जाता है। एक मात्र तुम्हारे चरण रस में मत्त जन अन्य कुछ नहीं देखता है।

अनाथं पतितं मूढं त्वदैकपदजीवनम्।
कृपास्निग्धावलोकेन पश्य वृन्दावनेश्वरि ॥६३॥

हे वृन्दावनेश्वरि! एक मात्र तुम्हारे चरण कमल को जीवन समझने वाला यह पतित, अनाथ, मूढ जन को करुणा स्निग्ध अवलोकन के द्वारा देखिये।

स्वामिन्यतिरसाश्चर्य्यं मूर्त्ते स्वस्य प्रियस्य च।
रहः शुश्रूषणे योग्यंमम देहि परं वपुः ॥६४॥

हे स्वामिनि! हे अत्यन्त रसमय आश्चर्य मूर्ति वाली! आप अपने एवं प्रिय श्रीहरि की रहः सेवा में योग्य श्रेष्ठ शरीर को प्रदान कीजिये।

ब्रह्मे शनारदादीनां यत्राशापि सुदुस्तरा ।
तव कैंकर्य्यपदवीं कामयन्तं धिगस्तु माम् ॥६५॥

जिस किंकरी पदवी में ब्रह्मा, शिव, नारदादियों की आशा अत्यन्त दुस्तर है अर्थात् वहां उनकी आशा नहीं पहुँचती है उस कैंकर्य्य पदवीको छोड़कर अन्यत्र कैंकर्य्य पदवीकी कामना करने वाला क्या मुझे धिक्कार नहीं है ।

राधे त्वद्दास्यपदवी सर्वभवतैश्च दुर्गमाम् ।
तत्रापि बत निर्लज्जो दुःप्रत्याशां करोम्यहम् ॥६६॥

हे श्रीराधे तुम्हारी दास्य पदवी समस्त भक्तों के दुर्गम है तो भी निर्लज्ज मैं इस प्रकार असम्भव प्रत्याशा कर रहा हूँ ।

अत्यसंभावितेप्यर्थे दुराशा मे ययार्पिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै तस्यै तुभ्यं नमो नमः ॥६७॥

अत्यन्त असम्भावित इस अर्थ में जिनके द्वारा यह आशा समर्पित हुई है उन महापुरुष का नमस्कार नमस्कार एवं तुमको भी नमस्कार है ।

सर्वमया दयातीते सर्वे साधकवैभवे ।
किमशक्यं तवाप्यस्ति नमस्तुभ्यं नमो नमः ॥६८॥

हे दयातीते तुम्हारे लिये कुछ अशक्य नहीं है । तुम्हारे लिये नमस्कार नमस्कार नमस्कार है ।

यश्चानेनेश्वरीं राधां स्तवेन स्तौति भावतः ।
स तस्या उन्मदरसं प्रसादं लभतेऽचिरात् ॥६९॥

जो जन इस स्तव के द्वारा ईश्वरी श्रीराधिका की स्तुति करता है वह उनके उन्मद रस रूप प्रसाद का शीघ्र ही लाभ करेगा।

इति श्री प्रबोध सरस्वती बिरचितं
वृन्दारण्यबिलासिनी श्रीराधिका स्तोत्रम समाप्तम्।

।। श्रीश्रीराधामदन गोपाल देवो शरणम् ।।

उपसंहार

अगत्येक गतिं नत्वा हीनार्थाधिक साधकम् ।
श्रीचैतन्यं लिख्यतेऽस्य प्रेम भक्तिवदान्यता ।।

परम करुणा वरुणागार कलियुग पावनावतार महाभाव रसराज भण्डार स्वयं भगवान श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु कृपा करके जब श्रीनीलाचल जगन्नाथ धाम से श्रीवृन्दावन पधारे, तब काशी में श्रीतपनमिश्र और चन्द्रशेखर दोनों प्रिय भक्त की प्रार्थना से श्रीपाद प्रकाशानन्द पर कृपा की, इस कृपा को पूज्यपाद श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामी पाद जी ने श्रीचैतन्य चरितामृत आदि लीला में वर्णन किया ।

आपने प्रकाशानंद हाते ते धरिया ।
वसाइल सभामध्ये सम्मान करिया ।।
पुछिल-तोमार नाम श्रीकृष्ण चैतन्य ।
केशव भारतीर शिष्य ताते तुमि धन्य ।।
सम्प्रदायी सन्यासी तुमि रह एइ ग्रामे ।
कि कारणे आमा सभार ना कर दर्शने ।।
सन्यासी हइया कर नर्तन-गायन ।
भावक सब सङ्गे लैया कर संकीर्तन ।।
वेदान्त पठन ध्यान सन्यासीर धर्म ।
ताहा छाड़ि केने कर भावुकेर कर्म ।।

प्रभावे देखिये तोमा साक्षात् नारायण।
हीनाचार कर केने कि इहार कारण॥
प्रभु कहे शुनु श्रीपाद! इहार कारण।
गुरु मोरे मूर्ख देखि करिला शासन॥
मूर्ख तुमि तोमार नहि वेदान्तोधिकार।
कृष्ण मंत्र जप सदा, एइ मंत्र सार॥
कृष्ण मंत्र हैते हवे संसार-मोचन।
कृष्ण नाम हइते पावे कृष्णेर चरण॥
नाम बिनु काले-काले नाहि आर धर्म।
सर्व मन्त्र सार नाम एइ शास्त्र मर्म॥
एत बलि एक स्लोक शिक्षाइल मोरे।
कण्ठे करि एइ स्लोक करिह विचारे॥

(बृहन्नारदीय वचनं)

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥
एइ आज्ञा पाया नाम लइ अनुक्षण।
नाम लैते लैते मोर-भ्रान्त हैल मन॥
धैर्य्य करिते नारि हैलाम उन्मत्त।
हाँसि काँदि नाचि गाइ- यैछे मदोन्मत्त
तवे धैर्य करि मने करिल विचार।
कृष्ण नामे ज्ञानाच्छन्न हाइल आमार॥
पागल हइलाङ आमि धैर्य्य नहे मने।
एत चिन्ति निवेदिनु गुरुर चरणे॥
किवा मंत्र दिला गोसाञि किवा तार वल।
जपिते जपिते मन्त्र करिल पागल॥

हाँसाय नाचाय मोरे कराय क्रन्दन ।
एत शुनि गुरु हाँसि बलिला वचन ।।
कृष्ण नाम महामन्त्रेर एइत स्वभाव ।
एइ जपे तार कृष्णे उपजये भाव ।।
कृष्ण विषयक प्रेमा-परम पुरुषार्थ ।
यार आगे तृण तुल्य चारि पुरुषार्थ ।।
पंचम-पुरुषार्थ प्रेमानन्दामृत सिंधु ।
मोक्षादि आनन्दजार नहे एकबिन्दु ।।
कृष्ण नामेर फल प्रेमा-सर्व शास्त्र कय ।
भाग्ये सेइ प्रेमा तोमार करिल उदय ।।
प्रेमार स्वभावे करे चित्त तनु क्षोभ ।
कृष्णेर चरण-प्राप्त्ये उपजाय लोभ ।।
प्रेमार स्वभावे भक्त हासे कान्दे गाय ।
उन्मत्त हइया नाचे-इति-उति धाय ।।
स्वेद कम्प रोमाञ्चाश्रु गद्-गद् वैवर्ण्य ।
उन्माद् विषाद धैर्य्य, गर्व, हर्ष, दैन्य ।।
एत भावे प्रेमा भक्त गणरे नाचाय ।
कृष्णेर आनन्दामृत सागरे भासाय ।।
भाल हैल पाइले तुमि परम पुरुषार्थ ।
तोमार प्रेमेते आमि हैलाम कृतार्थ ।।
नाचो गाओ भक्त सङ्गे कर सङ्कीर्तन ।
कृष्णनाम उपदेशि तार सर्व जन ।।
एत बलि एक स्लोक शिक्षाइला मोरे ।
भागवतेर सार एइ बोले बारे-बारे ।।

।। भागवते ।। ११-२-४०
एवंव्रत: स्वप्रियनाम कीर्त्या जातानुरागो द्रुत चित्त उच्चै:
हसत्यथो रोदिति रौति गायत्युन्भावन्नृत्यति लोक बाह्य:

एइ तार वाक्ये आमि दृढ़-विश्वास करि ।
निरन्तर कृष्णनाम-सङ्कीर्तन करि ।।
सेइ कृष्ण नाम कभु गाओयाय नाचाय ।
गाइ नाचि नाहि आमि आपन इच्छाय ।।
एत सुनी सन्यासीर फिर गेलो मन
(प्रभुर चरण धरि करे निवेदन)
वेदमय मूर्ति तुमि साक्षात् नारायण ।
क्षम अपराध पूर्वे ये कोइनु निन्दन ।।
एइ मत ता साभार क्षमि अपराध ।
सवाकारे कृष्णनाम करिला प्रसाद ।।
वाहु तुलि वले प्रभु बोल-हरि-हरि ।
हरिध्वनि करे लोक स्वर्ग मर्त्य भरि ।।
लोक निस्तारिया प्रभुर चलिते हैल मन ।
वृन्दावने पाठाइ लेन श्रीसनातन ।।

इस प्रकार श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु प्रकाशानन्द जी का नाम प्रबोधानन्द रख कर श्रीवृन्दावन में भेज दिये, श्रीवृन्दावन आकर पुराना कालीदह जहाँ नन्द नन्दन कालीनाग को दण्ड दिया था। कदम्ब के नीचे भगवान के चरण-चिन्ह हैं। कदम्ब के थोड़ी दूर में बैठकर श्रीबृषभानुनन्दिनी स्वामिनी राधाजू की दासी बनने के लिये और सेवा पाने के लिए जो प्रार्थना की उसका नाम—श्रीराधिका स्तोत्र है।

श्रीपाद प्रबोधानन्द जी दक्षिण प्रान्तस्थ आन्ध्र प्रदेश

कावेरी नदी के किनारे बेलंगुड़ी निवासी थे। पुराना कालीदह पर श्रीप्रबोधानन्द जी की समाधि है।

श्रीचैतन्य चन्द्रामृत, वृन्दावन महिमामृत, श्रीराधा रस सुधा-निधि संगीत-माधव आदि श्रीग्रन्थ रचना कर अंत में श्रीराधिका स्तोत्र रचे हैं। श्रीराधिका स्तोत्र रच-कर श्रीनिकुंज लीलामें प्रवेश किया, श्रावण कृष्ण पक्ष प्रतिपदा के दिन अपनी स्वामिनी जू की सेवा प्राप्त की।

छिद्द्येत खण्डश इदं यदि मे शरीर।
घोरा विपदावितत्तयो यदि वा पतन्ति ॥
हा हन्त ! हन्त! न तथापि कदापि भूयाद्।
वृन्दावनादितर तुच्छ पदे पिपासा ॥
खण्ड खण्ड है जाइ तन अंग अंग सत टूक।
वृन्दावन नहि छाँड़ियो, छांडिबो है बड़ी चूक ॥

सामेन माता सच मे पिता नः सा मे नः बन्धुःसच मे सखा नः।
सामे न मित्रं सच मे गुरु नः यो मे न वृन्दावन वासमादिसेत् ॥

वृन्दारण्ये चरतुचरणः दृक पश्य वृन्दावन श्री (चिन्ह)
वृन्दावन गुणगान् कीर्तय श्रोत्रः गह्यान्
वृन्दारण्या ब्रज परिमलं घ्राणः गात्रः त्वमास्मिन्।
वृन्दारण्ये लुठ पुलकितं कृष्ण केलि स्थलेषु ॥

मिलन्ति चिन्तामणि कोटि कोटय
स्वयं बहिः दृष्टिमुपैति वा हरिः।
तथापि वृन्दावन धूलि धूसर
न देहमन्यत्र कदापि यातु मे ॥

रे मन वृन्दा विपिन निहार।
यद्यपि मिलै कोटि चिंतामणि
तदपि न हाथ पसार।।
विपिन राज सीमा के बाहिर
हरि हू को न निहार।
जय श्री भट्ट धूलि धूसर तन
यह आशा उर धार।।

मेरा पूर्ण विश्वास है इस श्रीराधिका स्तोत्र के श्रवण, कीर्त्तन करने वाले अल्प समय में पंचम पुरुषार्थ प्रेम प्राप्त कर निकुंज में श्रीप्रिया प्रियतम के दर्शन कर लेंगे।

श्रीपाद ग्रन्थकार श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती ने आखिर में वर्णन किया—

स्वामिन्यतिर साश्चर्य मूर्त्ते स्वस्य प्रियस्य च
रह सुश्रुषणे योग्यं ममदेहि परम वपुः

भावार्थ—हे स्वामिनी, हे अत्यन्त रसमय आश्चर्य मूर्ति वाली आप अपने एवं प्रिय श्रीहरि की रह सेवा में भोग्य श्रेष्ठ शरीर को प्रदान कीजिए।

फल स्तुति सुनिये

यश्चानेनेश्वरी राधां स्तवेन स्तोति भावतः
स तस्या उन्मद रसं प्रसादं लभतेऽचिरात्।।

भावार्थ—

जो जन इस स्तव के द्वारा ईश्वरी श्रीराधा रानी को

स्तुति करता है, वह उनके उन्माद रस रूप प्रसाद का शीघ्र ही लाभ करेगा।

काल के प्रभाव से यह ग्रन्थ लुप्त हो रहा था। पर विक्रम संवत् २०२१ में कुसुम सरोवर वाले बाबा कृष्ण दास जी ने अनुवाद करके प्रकाशित किये थोड़े दिन के बीच में यह राधिकाजी का स्तोत्र अदृश्य हो गया। श्रीगुरु कृपा से मेरे हृदय में प्रेरणा हुई कि यह ग्रन्थ प्रकाशित हो जाय। क्योंकि इस को पढ़ने से अनायास श्रीराधिका जी में दासीभाव होवे। यदि कोई श्रीस्वामिनी जी की सेवा प्राप्त करना चाहे उनके लिये अमियेमय औषधि है। ऐसा विचार करते हुए, इस राधिका स्तोत्र को लेकर परम पूज्यपाद श्रीश्रीगुरुदेव नित्यानन्द भट्ट जी महाराज के द्वितीयपुत्र श्रीश्रीअच्युत लाल भट्ट जीमहाराज से प्रार्थना की, वे मेरे प्रार्थना से प्रसन्न होकर तदुपरान्त प्रस्तावना लिखकर दिये और इस राधिका स्तोत्र छपवाने का आदेश दिये। इस राधिका स्तोत्र छपाने में जो भक्त अर्थ सहयोग कर रहे हैं। उनको पठन पाठन करने वाले आशावींद दें, जिससे श्रीराधा गोविन्द जी उन पर प्रसन्नहों। श्रीपाद जी ने अन्त में फलश्रुति वर्णन की है—

यश्चानेनेश्वरी राधां स्तवेन स्तौति भावतः ॥
स तस्या उन्मद रसं प्रसादं लभतेऽचिरात् ॥

भावार्थ--जो जन इस स्तव के द्वारा ईश्वरी श्रीराधिका जी की स्तुति करता है, वह उनके उन्मादरस रूप प्रसाद का शीघ्र ही लाभ करता है।

भक्त पद रज प्रार्थी—श्रीकृष्णदास दास
श्रीवृन्दावन धाम,

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

अथ माध्वगौड़ेश्वर गुरु परम्परा

चार सम्प्रदा मूल गुरु श्रीनारायण निरधार।
याते चारों एक है समझि विचार, विचार॥
नारायण के विधि भये तिनके नारद जान।
तिनके बेद व्यास जू राचे महापुरान॥
तिनके मध्वाचार्य्य जू भाष्यकार निरधार।
भक्ति तत्त्व अति सुदृढ़ किय मायावाद कुठार॥
पद्मनाभ तिनके भये नरहरि तिनके दास।
तिनके माधव जानिये तिनके क्षोभ प्रकाश॥
जय तीरथ तिनके भये बानी परम पवित्र।
कहि टीका विजयध्वजी श्रीभागवत विचित्र॥
ज्ञानसिंधु तिनके भये तासु दयानिधि धन्य।
तिनके विद्यानिधि भये गुरु गोपाल अनन्य॥
तिनके भये राजेन्द्र जू तिनके भये जय धर्म।
तिनके पुरुषोत्तम भये भजन बिना नहि कर्म॥
तिनके भये ब्रह्मण्य जू तिनके तीरथ व्यास।
तिनके लक्ष्मीपति भये माधवेन्द्र विश्वास॥
तिनके ईश्वरचन्दजू नीकी बिधि करि सेव।
जग शिक्षा हित जगत गुरु जिनहि कियो गुरुदेव॥
महाप्रभू चैतन्यकौ प्रथमहि नीमानंद।
नाम प्रगट पाछें चली परनाली निरद्वन्द॥
प्रथम चलनि याकी कहूँ ब्रह्म सम्प्रदानाम।
मध्वाचार्य्य पर्य्यन्त सब संतन कह्यौ गुनग्राम॥

भक्तमाल के भक्तिरस बोधनी के टीकाकार श्रीप्रिया दास जी महाराज के गुरु श्रीमनोहर दास जी कृत संप्रदाय बोधनी से।

प्राप्ति स्थान

❀ श्रीअच्युतलाल जी भट्ट
मधुनिकुंज, भट्टगली, अठखम्बा
वृन्दावन–२८११२१

❀ पंडित श्रीजंगबहादुर मिश्र
ग्राम वाबू नरहा (बिहार) निवासी
राधाकृष्ण सेवा संस्थान
धूरियावाली कुञ्ज, वृन्दावन २८११२१

❀ श्रीहरिनाम प्रेस
बाग बुन्देला-वृन्दावन-२८११२१

न्यौछावर : सप्रेम पाठ

मुद्रक: श्रीहरिनाम प्रेस, वृन्दावन